E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय

महाकाव्य का स्वरूप जानने के लिए सर्वाधिक सरल और सुन्दर परिभाषा १४वीं शती ई० में उत्पन्न आचार्य विश्वनाथ ने अपने लक्षण-ग्रन्थ साहित्यदर्पण में दी है। उनके कथनानुसार महाकाव्य एक सर्गबद्ध प्रबन्धकाव्य है, जिसमें कि कोई देवता अथवा सद्वंश में उत्पन्न धीरोदात्त गुणों से अन्वित एक या अनेक नरेश नायक होते हैं। महाकाव्य का प्रारम्भ इष्ट-देवता के प्रति नमस्क्रिया, आशीर्वाद अथवा वस्तुनिर्देश से होता है। शृङ्गार, वीर एवं शान्त में से कोई एक रस अङ्गी होता है, शेष अन्यान्य रस अङ्गभूत होते हैं। समस्त नाटकसन्धियाँ इसमें होती हैं। न बहुत छोटे और न बहुत बड़े ऐसे आठ से अधिक सर्ग होते हैं। प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द होते हैं, हाँ! सर्ग के अन्त में छन्दः परिवर्तन हो जाता है। कभी-कभी एक ही सर्ग में अनेक छन्द भी होते हैं। सर्ग के अन्त में भावी सर्ग की कथा सूचित कर दी जाती है। महाकाव्य में यथावसर नगर, सागर, पर्वत, षड्ऋतु, चन्द्रसूर्योदयास्त, वनोपवन, जलविहार, सन्ध्या, प्रातः, रजनी, मधुपान, रतोत्सव, संयोग, वियोग, विवाह, कुमारजन्म, रणप्रयाण, विजय एवं अभ्युदयादि का निबन्धन होना चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से कोई एक महाकाव्य का फल होता है। इस प्रकार के सल्लक्षणों से अलंकृत महाकाव्य किसी महापुरुष के जीवन का व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है-

सर्गबन्धो महाकाव्यस्तत्रैको नायकः सुरः। सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।।

एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा। शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।।

अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः। इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।।

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्। आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।।

क्वचिन्निन्दा खलादीनां सताञ्च गुणकीर्तनम्। एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।।

नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह। नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।।

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्। सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।।

प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः। सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।।

रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः। वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह।।

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा। नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।।

काव्यशास्त्र द्वारा प्रतिपादित लक्षणों के आधार पर परीक्षा करने पर 'किरातार्जुनीयम्' में महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण घटित होते हैं। इसकी कथा अत्यन्त प्रख्यात है जो महाभारत के वनपर्व से ली गई है। यह कथा १८ सर्गों विभक्त है। सबसे छोटे सर्ग चतुर्थ में ३८ तथा सबसे बड़े एकादश सर्ग में ८१ श्लोक हैं।

प्रायः महाकाव्यों के नाम उनके नायक के नाम पर (जैसे- रघुवंशम्) कथानक के नाम पर (जैसे कुमारसम्भवम्) अथवा अपने रचयिता के नाम पर (जैसे भट्टिकाव्यम्) होते हैं। महाकवि भारवि ने अपने महाकाव्य का नाम 'किरातार्जुनीयम्' रखा है, जो कि कथानायक अर्जुन से सम्बद्ध है। वस्तुतः इस महाकाव्य के समस्त कथानक का केन्द्र है- 'अर्जुन द्वारा किरातवेशधारी भगवान् शङ्कर से पाशुपतास्त्र की प्राप्ति'। इस प्रकार किरात (शिव) तथा मध्यमपाण्डव वीर अर्जुन के सुचरित से सम्बद्ध यह ग्रन्थ किरातार्जुनीयम् है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी-'किरातश्च अर्जुनश्च इति किरातार्जुनौ (द्वन्द्वसमासः) तौ अधिकृत्य कृतं काव्यम् इति किरातार्जुनीयम्' (किरातार्जुन + छ प्रत्यय)। ग्रन्थवाची शब्द सदैव नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होते हैं।

भगवान् नारायण के अंश तथा प्रसिद्ध क्षत्रिय वंश में उत्पन्न अर्जुन इस महाकाव्य के नायक हैं जो धीरोदात्त आदि गुणों से अलंकृत, अत्यन्त गम्भीर, पराक्रमी, आत्मश्लाघारहित एवं दृढव्रती हैं। इसमें वीररस प्रधान है तथा शृंगार इत्यादि रसों का चित्रण अङ्ग रूप में हुआ है, इसमें यत्र-तत्र सभी पुरुषार्थों का निरूपण है किंतु पाशुपत रूप दिव्यास्त्र लाभ ही परम पुरुषार्थ है। प्रसिद्ध व्याख्याकार मल्लिनाथ ने स्वयं ही इस तथ्य को स्वीकार किया है:

नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशज-

स्तस्योत्कर्षकृते त्ववर्ण्यततरां दिव्यः किरातः पुनः।

शृंगारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीरः प्रधानो रसः

शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम्।।

आचार्य मल्लिनाथ के अनुसार किरात का प्रधान रस 'वीर' है। शृङ्गार आदि उसके अङ्ग हैं- 'शृङ्गारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीरः प्रधानो रसः'। यह तथ्य सुस्पष्ट है कि महाकाव्य का आद्यन्त स्वरूप उत्साह, शौर्य एवं पराक्रमादि का परिचायक है। पुरुषार्थचतुष्टय का एक विशेष अंग 'अर्थ' इसका अभिमत फल है, फलतः सम्पूर्ण महाकाव्य में वीर रस का ही प्रभावातिशय है। परन्तु महाकवि ने इस 'वीर' को पुष्ट करने के लिए अन्यान्य रसों का प्रयोग भी ग्रन्थ में किया है, अर्जुन के इन्द्रकीलशिखर प्रयाण में द्रौपदी-गत वियोगशृङ्गार तथा गन्धर्वोपभोग प्रसंग में संयोगशृङ्गार और किरातार्जुन युद्ध में रौद्र एवं भयानक रसों का भी परिपाक दृष्टिगोचर होता है। सदुक्तिकर्णामृतकार की तो घोषणा है- 'प्रकृतिमधुरा भारविगिरः' और शारदातनय के मतानुसार भारवि की वाणी में भाव एवं रस का तादात्म्य है- 'तादात्म्यं भावरसयोः भारविः स्पष्टमूचिवान्'। वस्तुतः महाकवि ने समस्त रसों का परिपाक ग्रन्थ में नहीं प्रस्तुत किया है, परन्तु यह सच है कि कवि द्वारा प्रयुक्त रस प्रसङ्गानुकूल हैं। अर्जुनकृत ईशस्तुति देवविषयक रति भावना का सर्वोत्तम निदर्शन है।

महाकाव्य का प्रारम्भ वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण से हुआ है। 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते' के अनुसार काव्य के आदि में मांगलिक **'श्री'** तथा प्रत्येक सर्ग के अन्त में **'लक्ष्मी'** शब्द का प्रयोग किया गया है। यथा-

श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं
प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः।।

पुनश्च

विधिसमयनियोगाद् दीप्तिसंहारजिह्मं

शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ।
रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ
दिनकृतमिव **लक्ष्मी**स्त्वां समभ्येतु भूयः।।

यथास्थान दुर्जन की निन्दा तथा सज्जन की प्रशंसा की गई है। सर्ग में प्रायः एक प्रकार के छन्द का प्रयोग हुआ है तथा अन्त में छन्द का परिवर्तन भी किया गया है। यथा प्रथम सर्ग में वंशस्थ प्रयुक्त हुआ है और इस सर्ग की समाप्ति पुष्पिताग्रा तथा मालिनी से हुई है। पञ्चदश सर्ग में विविध छन्दों का श्लाघनीय चमत्कार है। छन्दोऽलङ्कारयोजना महाकवि भारवि ने सम्पूर्ण महाकाव्य में विविध छन्दों एवं अलङ्कारों का प्रयोग किया है। यद्यपि महाकाव्यलक्षण के अनुसार ही कवि ने सर्ग के अन्त में छन्दः परिवर्तन किया है, फिर भी बहुलता की दृष्टि से सम्पूर्ण महाकाव्य की छन्दोयोजना इस प्रकार है- (१) वंशस्थ (अन्त में पुष्पिताग्रा तथा मालिनी) (२) वियोगिनी (अन्त में वियोगिनी एवं उपजाति, पुष्पिताग्रा एवं वसन्ततिलका) (३) उपजाति (अन्त में वंशस्थ, वियोगिनी एवं मालिनी) (४) वंशस्थ (अन्त में) पुष्पिताग्रा एवं मालिनी) (५) द्रुतविलम्बित (औपच्छन्दसिक, क्षमा, प्रमिताक्षरा, प्रभा, रथोद्धता, जलधरमाला, प्रहर्षिणी, जलोद्धतगति, वसन्ततिलका, पुष्पिताग्रा, मालिनी (६) प्रमिताक्षरा (अन्त में वसन्ततिलका तथा मालिनी) (७) प्रहर्षिणी (अन्त में वसन्ततिलका) (८) वंशस्थ (वसन्ततिलका) (९) स्वागता (अन्त में वसन्त० तथा मालिनी) (१०) पुष्पिताग्रा (अन्त में शिखरिणी) (११) श्लोक (अन्त में उपजाति तथा वसन्त०) (१२) उद्गता (अन्त में प्रहर्षिणी) (१३) औपच्छन्दसिक (अन्त में) वसन्त०) (१४) वंशस्थ (अन्त में द्रुतविलम्बित एवं मालिनी) (१५) श्लोक (अन्त) में वियोगिनी, उपजाति, वंशस्थ एवं वसन्त०) (१६) उपजाति (अन्त में मालिनी एवं वसन्त०) (१७) उपजाति (अन्त में प्रहर्षिणी एवं मालिनी) (१८) द्रुतविलम्बित, रथोद्धता, प्रमिताक्षरा, अपरवस्त्र, प्रमुदितवदना, उपजाति, प्रमिताक्षरा, शालिनी, औपच्छन्दसिक, स्वागता, मत्तमयूर, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, मालिनी एवं शिखरिणी। महाकवि भारवि अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रायः समस्त प्रमुख अलङ्कारों का प्रयोग करते हैं। किरातार्जुनीयम् का साकल्येन परिशीलन करने पर जो अलङ्कार दृष्टिगोचर होते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं-अनुप्रास, अतिशयोक्ति, अनुमान, अर्थान्तरन्यास, अर्थापत्ति, अर्धभ्रमक

(५।२७), उत्प्रेक्षा, उपमा, उदात्त, ऊर्जस्वल एकावली, कारणमाला, काव्यलिङ्ग, तद्गुण, तुल्ययोगिता, दृष्टान्त, निदर्शना, परिकर, परिणाम, परिवृत्ति, पर्याय, पर्यायोक्ति, प्रेय, भाविक, भ्रान्तिमान्, माला, मालोपमा, मीलन, यथासंख्य, यमक, रसवत्, रूपक, विभावना, विरोधाभास, विशेषोक्ति, विषम, व्यतिरेक, श्लेष, सङ्कर, समुच्चय, समासोक्ति, समाहित, सहोक्ति, सामान्य, स्मरण, स्वभावोक्ति, संशय, अपह्नुति एवं हेतूत्प्रेक्षा। स्थानाभाव के कारण इन अलङ्कारों के महाकाव्यगत सन्दर्भ का सविस्तर व्याख्यान नहीं किया जा रहा है। इन अलङ्कारों के साथ ही साथ महाकवि ने चित्रकाव्य के अनेक स्वरूपों (गोमूत्रिका, द्व्यक्षर, निरौष्ठ्य, प्रतिलोम, प्रतिलोमानुलोमपाद, श्रृंखलायमक एवं सर्वतोभद्र आदि) का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय-सूर्योदय, सूर्यास्त, सन्ध्या, जलविहार, पुष्पावचयन, युद्ध इत्यादि का यथास्थान सुन्दर निरूपण किया गया है। चतुर्थ सर्ग में हिमालय पर्वत, चतुर्थ से दशम तक ऋतुओं का, षष्ठ में इन्द्र, स्वर्गलोक का, नवम में सन्ध्या, रात्रि, चन्द्रोदय, प्रभात का बहुत चित्ताकर्षक चित्रण है। सप्तम से दशम तक अप्सराओं के आगमन, वनविहार, जलक्रीडा, रतिक्राडा इत्यादि का मनोरम चित्रण हुआ है। इसी प्रकार त्रयोदश में मृगया, मुनिगण, शिवसेना का रण हेतु प्रयाण तथा पञ्चदश से अष्टादश सर्ग तक युद्ध का सविस्तर वर्णन है।

इन्द्रकील पर्वत पर दिव्यास्त्र लाभ हेतु अर्जुन की तपश्चर्या एवं किरातरूप में भगवान् शिव तथा अर्जुन का द्वन्द्व युद्ध ही महाकाव्य का प्रधान वर्ण्य विषय है। अतः इसी को आधार बनाकर महाकाव्य का 'किराताजुनीयम्' नामकरण किया गया है।

इस प्रकार महाकाव्य के सभी लक्षणों से अलंकृत होने के कारण यह ग्रन्थ अपने महाकाव्यत्व को चरितार्थ करता है। महाकवि भारवि ने अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं उदात्त वर्णनात्मक शैली द्वारा महाभारत के एक लघु तथा नीरस कथानक को सुरुचिपूर्ण, सरस तथा बृहदाकार महाकाव्य का स्वरूप प्रदान किया है और अपनी अलंकार कुशलता द्वारा काव्य को अत्यन्त चमत्कार युक्त तथा रमणीय बना दिया है। परवर्ती कवियों के लिए एक आदर्श की प्रतिष्ठा की है। महाकवि माघ तथा श्रीहर्ष विशेषतः इससे प्रभावित हैं और इस प्रकार 'बृहत्त्रयी' में 'किरातार्जुनीय' का अन्यतम स्थान है।

प्रस्तुत महाकाव्य की कथा का मूलस्रोत महाभारत का वनपर्व है। इस पर्व के अन्तर्गत अर्जुनाभिगमनपर्व २७ वें अध्याय से प्रारम्भ कर कैरातपर्व नामक ४१ वें अध्याय तक कुल १५ अध्यायों में इस कथा का निरूपण है। द्यूतक्रीडा में कौरवों से पराजित होने के कारण राज्यभ्रष्ट युधिष्ठिर द्रौपदी तथा अनुजों सहित प्रतिज्ञानुसार वन में चले जाते हैं और द्वैतवन में निवास करने लगते हैं। महाकाव्य की कथा यहीं से प्रारम्भ होती है।

महाकवि भारवि ने महाभारत के वनपर्व की इसी कथा को अपने काव्य का आधार बनाया है। यत्र-तत्र घटनाओं में कुछ परिवर्तन एवं परिष्कार करके कथा को अधिक सरस तथा हृदयग्राही बनाया है और इस प्रकार अति संक्षिप्त लघु कथानक के ऊपर अष्टादशसर्गीय विशाल महाकाव्य के प्रासाद को प्रतिष्ठित किया है। अपनी प्रवण विचार शक्ति द्वारा अद्भुत कल्पनाओं की उद्भावना करके काव्य के कलेवर का संवर्धन करके उसको एक मनोहर महाकाव्य का स्वरूप प्रदान किया है।

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी